# अध्याय-द्वितीय

## साहित्य समीक्षा

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं पंचायती राज व्यवस्था पर कई अध्ययन किये गये हैं। यहाँ इस शोध की विषय वस्तु से सम्बंधित अध्ययन सामग्री की समीक्षा की गई है। जो इस शोध की दृष्टि से उपयोगी एवं प्रासंगिक है। पिछले कुछ दशकों के दौरान, भारत के विभिन्न हिस्सों में अनुसूचित जनजातियो की भूमिका और स्थितियों पर कुछ साहित्य मौजूद रहे है। देश में विविध आंदोलनों, राजनीतिक दलों और विभिन्न संघर्षों में जनजातियो की भूमिका का विश्लेषण करते हैं। कुछ अध्ययन अनुसूचित जनजातियो नेताओं द्वारा नई पहचान के निर्माण की भी जांच करते हैं, जिससे उन्हें आत्मविश्वास और आत्म-सम्मान मिला है। इसके अलावा, 73 वें संशोधन ने पंचायतों में अनुसूचित जनजातियो को प्रतिनिधित्व दिया है। यहां तक कि शक्ति और वित्तीय जिम्मेदारियों के विकेंद्रीकरण और इसके प्रभाव, पंचायती संस्थानों की संरचना, स्थानीय नौकरशाही की भूमिका ग्राम विकास के कार्यक्रमों के साथ पंचायती राज संस्थानों पर साहित्य का एक बड़ा भंडार मौजूद है । अभी तक कुछ अध्ययन भी हुए हैं, जो इस बात की पड़ताल करते हैं कि अनुसूचित जनजातियो इस प्रावधान का उपयोग करने में कितना सक्षम रहे हैं। इसने सामाजिक-अंतःक्रिया स्तर पर जमीनी स्तर की राजनीति में जो बदलाव लाया है। इसलिए इस संदर्भ में, शोधकर्ता ने मुख्य रूप से मौजूदा अध्ययनों को दो व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया है: (1) साहित्य के सैद्धांतिक कार्य (2) साहित्य के प्रकार जो साहित्य मुख्य रूप से सिर्फ भारतीय संदर्भ से जुड़ा है। इसके अलावा, साहित्य के अनुभवजन्य प्रकार को तीन व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:- (क) पंचायती राज

संस्थान और कमजोर वर्ग (ख) पंचायतों में पूर्व -73 संशोधन अधिनियम और अनुसूचित जनजातियो प्रतिनिधि (ग) पंचायतों में 73 वें संशोधन अधिनियम और अनुसूचित जनजातियो के विकास से सम्बंधित है।

**भारत में जनजातीय अध्ययन**

भारतीय आदिवासी समाज प्रकृति और लोगों की विविधता वाला एक अनूठा समाज है। आदिवासियों के बीच गरीबी, खराब स्वास्थ्य और स्वच्छता, अशिक्षा और अन्य सामाजिक समस्याएं भारतीय अर्थव्यवस्था पर एक व्यापक प्रभाव डाल रही हैं। पंचवर्षीय योजनाओं ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों की स्थितियों की बेहतरी के लिए निवेश समर्थित योजनाओं और परियोजनाओं की कार्यान्वयन के लिये एक श्रृंखला तैयार किया जा रहा है । आदिवासी अर्थव्यवस्था, भूमि अलगाव, सामाजिक-आर्थिक विकास, आदिवासी संस्कृति, राजनीतिक सहभागिता विकास आदि के आधार पर भारत में कई आदिवासी अध्ययन हुए हैं।

**आदिवासी विकास और आदिवासी अधिकार**

**अमर बुच, जैन और चौधरी (1999)** ने मध्य प्रदेश में पंचायती राज में महिलाओं पर अध्ययन किया है । अध्ययन तीन अलग-अलग सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में आयोजित किया गया था जहां एसटी, एससी और अन्य संख्यात्मक रूप से प्रमुख हैं। जहां तक उनके सामाजिक स्थिति का संबंध है, अध्ययन में यह पाया गया की अधिकतम पंचायत सदस्य 343 में से 307 हाशिए पर हैं। अध्ययन में 283 महिलाओं और 80 पुरुषों ने भाग लिया। अधिकांश नेताओं की आयु 25 वर्ष से अधिक है। वे कृषि कार्य में लगे हैं। वास्तव में, वे या तो मजदूरी कमाने वाले हैं या खेती करने वाले हैं। हालाँकि, जिले में थोड़ी भिन्नता है, लेकिन

अधिकांश उत्तरदाता गरीबी रेखा के नीचे से हैं। इनमे से 50 फीसदी से ज्यादा अनपढ़ हैं। उनमें से अधिकांश का औपचारिक अर्थों में किसी भी राजनीतिक दल से कोई संबंध नहीं था। 53 उत्तरदाता भूमिहीन हैं, लेकिन उनमें से एक अच्छी संख्या 126 के पास या तो 5 एकड़ से अधिक भूमि है। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि उत्तरदाताओं की एक अच्छी संख्या ने पीआरआई नेता बनने के बाद श्रम कार्य बंद कर दिया है, लेकिन आज भी 92 इस काम में लगे हुए हैं। अध्ययन ने निष्कर्ष निकाला है कि पीआरपी, में निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के नेताओं पर संख्यात्मक रूप से हावी है। आदिवासी भारत में सबसे पिछड़े जातीय समूह हैं, वे विकास के तीन सबसे महत्वपूर्ण संकेतकों पर बहुत कम हैं: स्वास्थ्य, शिक्षा और आय। आदिवासी न केवल सामान्य आबादी की तुलना में, बल्कि अनुसूचित जाति (दलित) और अन्य पिछड़े सामाजिक समूहों के साथ संवैधानिक संरक्षण की तुलना में सबसे पिछड़े हैं। इसलिए मुख्य रूप से मध्य भारत के आदिवासी अनुसूचित क्षेत्र में, सरकार ने पंचायतों (अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विस्तार) अधिनियम, 1996 (PESA) के प्रावधानों के रूप में एक अधिनियम पारित किया था। यह 24 दिसंबर 1996 को लागू हुआ और वर्तमान में दस राज्यों - आंध्र प्रदेश, झारखंड, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, तेलंगाना  और राजस्थान में लागू है। अधिनियम में जनजातीय समाज को प्राकृतिक संसाधनों पर उनके पारंपरिक अधिकारों के संरक्षण और संरक्षण के लिए अपने स्वयं के भाग्य पर नियंत्रण रखने में सक्षम बनाने का इरादा है। PESA इस मायने में अभूतपूर्व है कि यह जनजातीय समुदाय को अधिक  स्वशासन की शक्तियाँ देता है और प्राकृतिक संसाधनों पर अपने पारंपरिक सामुदायिक अधिकारों को मान्यता देता है। जैसा कि कोठारी (2007) बताते हैं, कई आदिवासी समुदायों के बीच, भूमि और ऐसे अन्य प्राकृतिक संसाधनों का स्वामित्व समुदाय के संयुक्त रूप से है, और व्यक्तियों द्वारा उनका उपयोग इसके द्वारा स्वीकृत है। वास्तव

में, हालांकि, पेसा अधिनियम के पारित होने के बाद से इस तरह के जनजातीय सशक्तीकरण नहीं हो पाए हैं। ओडिशा में किए गए एक अध्ययन में आदिवासी पंचायतों में स्व-शासन के सिद्धांत और व्यवहार के बीच काफी अंतर पाया गया **(रथ 2007)**

**एस.एस. ढिल्लन (1995)** ने दक्षिण भारतीय ग्रामो मे नेतृत्व एव वर्ग सम्बन्धी अध्ययन किया है। उनके अनुसार ग्रामीण नेतृत्व के स्वरूप में तीन प्रभावी तत्व होते है - प्रथम, परिवार का उच्च सामाजिक स्तर, द्वितीय, परिवार का आर्थिक स्तर, तृतीय, व्यक्तिगत ने ग्राम संरचना एवं नेतृत्व पद्धति सम्बन्धी अध्ययन भारत के 6 गाँवों के क्षेत्रीय अध्ययन के आधार पर किया गया हैं।

**सुनन्दा पटवर्धन (1973)** का अध्ययन महाराष्ट्र के अनुसूचित जाति एवं जनजाति के जीवन में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनो की प्रकृति का विष्लेषण करता है।

**डी.एस. चैधरी (1981)** ने अपने अध्ययन मे उभरते ग्रामीण नेतृत्व को स्प्ष्ट किया है। यह अध्ययन सर्वेक्षण से एकत्रित प्राथमिक तथ्यो के विष्लेषण पर आधारित है। इस अध्ययन से ग्रामीण क्षेत्रो पर स्थानीय स्वशासन मे नेतृत्व की पृष्ठभूमि एव उनकी कार्य प्रणाली को संभालने हेतु उचित दिशा मिलती है।

**मीनाक्षी पंवार ने अपनी पुस्तक पंचायत राज और ग्रामीण विकास में विस्तार से स्थानीय शासन का अध्ययन किया है।** उन्होनं अपने अध्ययन मे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मध्यकालीन भारत में पंचायते, जातिगत पंचायतें एवं कवायली पंचायतो का उललेख किया हैं।

**बी.एस.खन्ना (1994)** ने भारत में पंचायती राज व्यवस्था का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में गहराई से अध्ययन किया है साथ ही इस अध्ययन में भारत के दस प्रमुख राज्यों में पंचायतों की कार्यप्रणाली को प्रस्तुत किया गया है।

**प्रेमलता पुजारी एवं विजय कुमार कौशीक (1994)** ने भारत मे आदिवासी महिलाओ की शक्ति विषय पर तीन जिलों मे एक अध्ययन संपादित किया है। यह अध्ययन महिलाओ के विकास से सम्बन्धित विविध विषयो पर लिखे गए निबन्ध शोध पत्र, उदाहरण के संकलन पर आधारित है।

**मंजू जैन (1994)** ने कार्यशील महिलाऐ एवं सामाजिक परिवर्तन पर अपने अध्ययन में सामाजिक परिवर्तन की निरन्तर प्रक्रिया मे कार्यशील महिलाओ की विविध कारकों के आधार पर समीक्षा की है।

**प्रभा आप्टे (1996)** ने भारतीय समाज में नारी विषय पर पुस्तक लिखी हैं। यह पुस्तक ऋग्वेद से लगाकर वर्तमान समाज तक में नारी की स्थिति की व्याख्या करती है।

**सम्पा गुहा (1996)** ने बदलते समाज में महिलाओ की राजनीतिक सहभागिता का अपने अध्ययन में व्याख्यायित किया हैं।

**जी.के.घोष एवं शुक्ला घोष (2007)** ने दलित और आदिवासी महिलाओ पर अपन अध्ययन के माध्यम से यह विष्लेषण किया है कि भारतीय समाज के पद सोपान में दलित जातियो के निचले स्थान के कारण महिलाओ की स्थिति मे भी दलित महिलाओ का स्थान नीचा एव उनकी समस्याऐं विशेष पर प्रकाश डाला है।

**महिपाल (2008)** ने अपने अध्ययन में पंचायत राज व्यवस्था में अतीत से लेकर आज तक जो बदलाव आये है। उनकी क्रम बद्धता एवं संक्षिप्त विवेचना करते हुए वर्तमान व्यवस्था का विस्तार से वर्णन किया है। डॉ महिपाल ने सभी स्तरों की 651 महिला पंचायत प्रतिनिधियों की समस्याओं का अध्ययन किया। ये महिलाएं यू.पी. इनमें से अधिकांश प्रतिनिधि दलित, निरक्षर और गरीब थी। उन्होंने इन महिलाओं द्वारा बताई गई विभिन्न समस्याओं का उल्लेख किया जैसे (क) उत्तरदाताओं में से अधिकांश को योजनाओं और ब्लॉक स्तर पर प्रस्तावित बैठकों के बारे में सूचित नहीं किया जाता है। यहां तक कि अगर उन्हें सूचित किया जाता है तो अधिकांश मामलों में उन्हें पुरुष परिवार के सदस्यों द्वारा इसमें शामिल होने की अनुमति नहीं है। (ख) उन्होंने कहा कि आर्थिक उद्देश्य के लिए उन्हें अपने पति पर निर्भर रहना पड़ता है। (ग) डर के कारण ऊपर वे लड़कियों को गाँव के बाहर स्थित स्कूलों में जाने की अनुमति नहीं देते हैं। (घ) उन्हें अपनी ज़मीन के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है, जिसकी वे लंबे समय से खेती कर रहे हैं। (घ ) PHCs में ख़राब प्रबंधन रही है। (च) जल निकासी में कोई सुधार नहीं और सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुकान में पक्षपात होता है। (ज) ब्लॉक कार्यालय में बैठक के स्थान पर शौचालय और एक अन्य आवश्यक सुविधा की कमी है। (झ) महिला प्रधानों के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव परिणामस्वरूप ग्राम पंचायत का कामकाज प्रभावित हुआ है, तथा आदिवासी ग्राम पंचायत अपने स्वयं के संसाधन जुटाने में विफल रही है। क्योंकि जैसे ही वह कर लगाती है, इसका ग्रामीणों द्वारा विरोध किया जाता है। यह पाया गया कि नौकरशाही महिलाओं को सशक्त बनाने में सहयोगी नहीं रही थी। यह पंचायतों के चुने हुए प्रतिनिधियों से बेहतर लगता है। लेखक के अनुसार, अनुसूचित जनजातियो महिला प्रधानों के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव कई ग्राम पंचायतों में स्थानांतरित किए गए थे। इससे पता चलता है कि पंचायत के माध्यम से कमजोर वर्गों को मिली शक्ति

ग्रामीण समाज के प्रमुख वर्गों को स्वीकार्य नहीं है। काम पर अनुभवी महिला प्रतिनिधियों की समस्याओं के विश्लेषण के आधार पर, लेखक ने सुझाव दिया कि आरक्षण सुविधा प्रदान करने से महिलाओं को सशक्त नहीं किया जा सकता है। उन्हें सशक्त बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें गंभीर प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण की आवश्यकता है। यह भी सुझाव दिया गया कि निर्वाचित प्रतिनिधियों में साक्षरता की दर कम है। इससे अपने पति पर उनकी निर्भरता बढ़ जाती है। बदले में इन महिलाओं को निर्भर रहने के लिए मजबूर किया जाता है। उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए उन्हें घर की आर्थिक गतिविधियों में खुद को संलग्न करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

**आर.पी. जोशी (1997)** द्वारा सम्पादित पुस्तक पंचायतों का संवैधानिकरण में पंचायती राज से सम्बन्धित विभिन्न सांविधिक प्रावधानो को विष्लेषित किया गया है। अध्ययन मे पंचायती राज के कानूनी एवं संवैधानिक पक्ष, पंचायत राज एवं आरक्षण नीति, राज्यों की शक्ति, महिला भागीदारी, वित्त आयोग आदि को राजस्थान के संदर्भ में उल्लेखित किया है।

**आर.पी. जोशी एवं जी.एस. नरवानी (2016)** ने पंचायती राज संस्थाओ के संवैधानिक स्तर पंचायती राज में जनता की सहभागिता का उल्लेख पंचायती राज दर्शन को प्रस्तुत किया है।

**एस.एन. अम्बेडकर एवं शैलजा नगेन्द्रा (2011)** ने पंचायती राज के द्वारा हुए महिला सशक्तीकरण को अपने अध्ययन मे प्रस्तुत किया है। राजनीतिक प्रक्रिया में महिला और पंचायती राज मे महिला की नेतृत्व क्षमता को प्रस्तुत किया है।

**अमित प्रकाश (2007)** ने झारखंड में जनजातीय अधिकारों का अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि झारखंड में आदिवासी अधिकारों की मिश्रित तस्वीर झारखंड में जनजातीय

अधिकारों की स्थिति के संबंध में है। जहां तक आदिवासी पहचान की स्वायत्तता और मान्यता का सवाल है, उसमे झारखंड राज्य का निर्माण एक सकारात्मक कदम है। आदिवासी राजनीतिक स्वायत्तता के सिद्धांत को स्वीकार किया गया है, और सामाजिक-सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों के साथ, आदिवासी अधिकारों के लिए बहुत कम औपचारिक खतरा उत्पन हुआ है। लेखक ने देखा कि भूमि, पानी, जंगल और स्थानीय संसाधनों के मुद्दे, जो दोनों के लिए आदिवासियों के लिए केंद्रीय हैं, अपनी आजीविका के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करना है जो लगातार खतरे में हैं। आदिवासी के सामाजिक-आर्थिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण खतरे हैं। जहां तक उनके सामाजिक-आर्थिक विकास और आर्थिक गतिविधि में भागीदारी का संबंध है, वे राज्य की सार्वजनिक नीति के एजेंडे पर कम प्राथमिकता देते हैं। यह इस तथ्य से उभरता है कि झारखंड में एसटी द्वारा बड़े पैमाने पर आबादी वाले क्षेत्रों में एक बुनियादी ढाँचे की सबसे धीमी रचना देखी गई है, जो एसटी को आर्थिक गतिविधियों में अधिक पूरी तरह से भाग लेने में सक्षम बनाएगी। इसके अलावा, कुछ चुनिंदा मानव विकास संकेतकों के संदर्भ में, एसटी सबसे कमजोर लोगों में से हैं। ऐसी स्थिति में, आदिवासी आबादी के अपने अधिकारों का प्रयोग करने की संभावना धूमिल होती है। हालांकि, जो सकारात्मक है वह जनजातीय अधिकारों के विभिन्न पहलुओं पर गहन और जोरदार सार्वजनिक बहस है। सर्वेक्षण में पाया गया कि पिछले दिनों पंचायतों के 47 प्रतिशत केंद्रों में पीने का पानी उपलब्ध था। हालाँकि, अब ऐसा नहीं था। हालांकि 86 फीसदी लोगों के पास घर थे, वे मरम्मत कार्य नहीं कर सकते थे। सर्वेक्षण में शामिल 85 फीसदी घरों में बिजली का कनेक्शन उपलब्ध नहीं था। यहां तक कि जिन घरों में बिजली कनेक्शन था, वहां बिजली के तारों को उचित इन्सुलेशन के बिना चालू  किया गया था। कुल 86 प्रतिशत भूमि की चाह के लिए कृषि में संलग्न नहीं हो सके।

आंगनवाड़ी केंद्र दो पंचायतों के तहत अधिकांश क्षेत्रों (91 प्रतिशत) में काम कर रहे थे, बच्चों को भोजन प्रदान कर रहे थे। इन केंद्रों में से तीन-तीन प्रतिशत में पेयजल की सुविधा थी। सर्वेक्षण में पाया गया कि इन कॉलोनियों में रहने वाले अधिकांश लोगों को कैंसर, तपेदिक और एड्स जैसी बीमारियों के बारे में पता नहीं था। सर्वेक्षण में शामिल 72.18 प्रतिशत घरों में लगा कि मोबाइल अस्पताल आवश्यक थे। सर्वेक्षण में व्यापक रूप से शराब (हडिया)और नशीली दवाओं के दुरुपयोग का उल्लेख किया गया है। 89 फीसदी घरों में अवैध शराब बनाये जा रही थी। सर्वेक्षण में पाया गया कि 77 फीसदी आदिवासी नियमित रूप से शराब और गांजा का इस्तेमाल करते हैं।

**लक्ष्मीनारायण मीणा (2015)** ने पंचायती राज की विकास यात्रा एवं नवीन स्वरूप, उत्तरदाताओ की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि, पचंयति राज मे ग्रामीण स्थानीय जनता की राजनैतिक एवं प्रशासनिक जन सहभागिता, पंचायती राज में आरक्षण की स्थिति का औचित्य, पंचायती राज मे प्रशिक्षण की प्रासगिकता एवं पंचायती राज के अन्य पक्षो का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक विष्लेषण किया है।

**पंचायती राज संस्थान और कमजोर वर्ग**

**बलवन्त राय मेहता समिति रिपोर्ट (1957)** मे ग्रामीण स्तर पर लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण और जन प्रतिनिधात्मक संस्थायो की स्थापना, उनका वैधानिक आधार हो, पर्याप्त साधन की स्थापना की।

**संथानम् समिति (1963)** में भ्रष्ट्राचार के प्रकार एवं उसके निवारण आदि की जानकारी मिलती है।

**सादिक अली समिति रिपोर्ट (1964)** मे पंचायती राज संस्थायो द्वारा कार्य नहीं करने का कारण, ग्राम सेवक एवं अनिवार्य करों का विवरण मिलता है।

**गिरधारी लाल व्यास समिति रिपोर्ट (1973)** पंचायती राज संस्थायो में ग्राम सेवक की नियुक्ति, वित्तीय सहायता तथा जिला परिषदो को सशक्त बनाने सम्बन्धी वर्णन मिलता है।

**अशोक मेहता समिति रिपोर्ट (1978)** मे विकास कार्यक्रम योजनाओ की क्रियान्विति जिला परिषदों की जिम्मेदारी तथा मण्डल पंचायत की स्थापना हुई।

**जी.वी.के.राव समिति रिपोर्ट (1985)** पंचायती राज संस्थायो से सम्बन्धित प्रशासनिक व्यवस्था, गरीबी उन्मूलन जिला स्तर पर योजनाऐं बनाना तथा चुनाव सम्बन्धी सिफारिशो की जानकारी मिलती हैं।

**एल.एम. सिंघवी समिति रिपोर्ट (1986)** में पंचायती राज व्यवस्था की वित्तीय स्थिति एवं संवैधानिक मान्यता देने सम्बन्धी सिफारिशो का उल्लेख है।

**पी. के. थुंगन समिति रिपोर्ट (1989)** में पंचायती राज व्यवस्था की वित्तीय स्थिति एवं संवैधानिक दर्जा देने, समय पर चुनाव तथा योजनाओ का बेहतर प्रबन्धन की सिफारिशे की। 73 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम को लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक के रूप में देखा जा सकता है।

**माईनर जेम्स के अनुसार (1999)** लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के सफल होने के लिए चार महत्वपूर्ण शर्तें हैं: (i) राजनीतिक व्यवस्था के भीतर और महत्वपूर्ण विकास गतिविधियों पर पर्याप्त प्रभाव डालने के लिए पर्याप्त शक्तियां (ii) महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन (iii) उन कार्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त प्रशासनिक क्षमता (iv)

नागरिकों के लिए निर्वाचित राजनेताओं की जवाबदेही और निर्वाचित राजनेताओं के लिए नौकरशाही की जवाबदेही दोनों सुनिश्चित करने के लिए विश्वसनीय जवाबदेही तंत्र का होना अवश्यक है । लेकिन सफल लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की वास्तविक सफलता में ग्रामीण स्तर पर मौजूदा सामाजिक संरचना की भूमिका को कम आंकता है। 73 वें संविधान संशोधन ने ग्रामीण समाज में महिलाओं, जनजातियो और हाशिए के समुदायों के राजनीतिक सशक्तीकरण में बहुत योगदान दिया है। इसने पंचायतों में खुले राजनीतिक अवसरों को प्रदान किया है। हालांकि, संख्या के संदर्भ में मात्र प्रतिनिधित्व शासन की गुणवत्ता में बहुत अधिक नहीं है, जब तक कि यह गरीबों और जरूरतमंदों को सेवाओं की कुशलता में परिलक्षित नहीं होता है।

पंचायती राज और प्रचलित जाति व्यवस्था के बीच संबंधों की प्रकृति और ग्राम समुदायों के संदर्भ में इसके परिणाम की जांच के बाद साल्वेम (1995) का सुझाव है कि, सशक्तिकरण में आर्थिक क्षेत्र में भूमि संबंधों में परिवर्तन और शिक्षा की सुविधा शामिल होगी। सामाजिक क्षेत्र में। अन्यथा 73 वाँ संवैधानिक संशोधन अधिनियम केवल कमजोर वर्गों, विशेषकर अछूतों, जनजातियो और महिलाओं के लिए क़ानूनी अधिकार जिससे उन्हें सशक्त बनाने का प्रयास करती है।

**मनोज राय (2011)** का कहना है कि 73 'संशोधन को सशक्तिकरण की सुविधा के लिए एक उपकरण के रूप में देखा जा सकता है' , पहले पंचायती राज संस्थाओं में निर्वाचित महिलाओं को सशक्त बनाना और फिर हर जगह महिलाओं को सशक्त बनाना, महिलाओं को न्याय प्रदान करना, और दलित, इस आशा में उनकी रुचि का प्रतिनिधित्व करते हैं कि यह राजनीति को पुरुष उच्च जातियों के वर्चस्व में बदल सकता है। आरक्षण से उन्हें उच्च जाति

के पुरुषों के साथ, मनुष्य के रूप में, नागरिकों के रूप में, उनके समान अधिकार प्राप्त करने में मदद मिलेगी। यह  एक ऐसा साधन है जो कमजोर वर्गों के सशक्तिकरण का है, विशेषकर महिलाओं और अनुसूचित जनजातियो के कल्याण और स्वाबलंबन के लिये जरूरी है।

**जी.के. लिटन और रवि श्रीवास्तव (1999)** कहते हैं कि अतीत में उत्तर प्रदेश राज्य में, पंचायतों को अनुसूचित जातियों के बहिष्कार के लिए अग्रणी मध्यम जातियों द्वारा नियंत्रित किया गया था। 1980 के दशक के मध्य से राज्य ने नीचे से एक मजबूत उतार-चढ़ाव का अनुभव किया है। नतीजतन, राज्य के कुछ हिस्सों में बढ़ रही सामाजिक जागरूकता और राजनीतिकरण के कारण, अनुसूचित जातियों ने पंचायत संस्थाओं पर मध्यम और उच्च जातियों के आधिपत्य को चुनौती दी है। हालाँकि, अनुसूचित जातियों, 73 वें संशोधन का उपयोग करते हुए, पंचायतों में प्रतिनिधित्व प्राप्त किया है, वे निर्णय लेने में भाग लेने में सक्षम नहीं हैं, जो कि उच्च और मध्यम जातियों के हाथों में है। अध्ययन का तर्क है कि प्रभावी भूमि सुधार के बिना, ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूदा बिजली संरचना, जो भूमि के कुलीन वर्ग को पंचायतों को नियंत्रित करने की अनुमति देती है, को बदला नहीं जा सकता है। हालांकि, वे इस बात से सहमत हैं कि राजनीतिक चेतना के बढ़ते स्तर और बहुजन समाज पार्टी की उपस्थिति के कारण, राज्य के कुछ हिस्सों में पंचायत स्तर पर कुछ बदलाव दिखाई दे रहा है। वे इस बात पर जोर देते हैं कि आरक्षण देने के दौरान अनुसूचित जनजातियों की भागीदारी को बेहतर बनाने में मदद मिल सकती है, अन्य शर्तें जैसे कि ग्रामीण इलाकों में विषम शक्ति संबंध समान रूप से महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

**एल.के. त्यागी और बी.पी. सिन्हा (2002)** ने राजस्थान और हरियाणा के जिलों में एक अध्ययन करने के बाद पंचायतों के माध्यम से कमजोर वर्गों के सशक्तिकरण के बारे में चर्चा

करते हुए कहा कि हालांकि लोगों को आरक्षण के माध्यम से कमजोर वर्गों के प्रतिनिधित्व के महत्व का एहसास है, फिर भी प्रक्रिया आगे बढ़ रही है जो अभी धीमी है। एससी / एसटी सदस्यों के विचारों से बचने, दबाने और हेरफेर करने के लिए प्रमुख लोगों की प्रवृत्ति भी प्रचलित है। इसके अलावा वे सुझाव देते हैं कि, हमें यह मानने की गलती नहीं करनी चाहिए कि कमजोर वर्गों के सशक्तीकरण का काम उन्हें आरक्षण के माध्यम से पंचायतों में पर्याप्त संख्यात्मक प्रतिनिधित्व प्रदान करने से है। इस प्रक्रिया को शिक्षा, आर्थिक अवसरों और गहन जागरूकता अभियान द्वारा सुगम बनाना होगा।

**डीसूजा (2012)** ने विकेंद्रीकरण के नवीनतम चरण, 73 वें संवैधानिक संशोधन और उसके बाद के संबंध में भारत में विकेंद्रीकरण की आवश्यकता, मानदंड और भौतिक लाभों की प्रकृति, अनुभव और अनुभव के सवालों को संबोधित किया। विकेंद्रीकरण की उत्पत्ति और पीआरआईएस के इतिहास को संक्षेप में प्रस्तुत करने के बारे में चर्चा करने के बाद, उन्हें लगता है कि 73 वें संवैधानिक संशोधन को पूर्व 73 संशोधन पीआरआई प्रणाली के दौरान आने वाली समस्याओं की प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। उन्होंने जिन समस्याओं की पहचान की थी, वहां अनियमित चुनाव और दमन व्याप्त थे। अपर्याप्त विचलन शक्तियों में नौकरशाही प्रतिरोध, ग्रामीण कुलीन वर्ग का वर्चस्व, और ग्राम सभाओं का असंतोषजनक कार्य रहा है। PRIs में SC / STs के आरक्षण पर, उन्होंने कहा कि SC / ST समरूप समूह नहीं हैं, कुछ सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर और समस्याएँ हैं। ये समूह अपने व्यवसायों के लिए अजीब हैं और SC / ST के अन्य समूहों के साथ तुलना करने योग्य नहीं हैं। जब तक कि SC / ST के पर्याप्त प्रतिनिधि नहीं हैं, इन समूहों में से PRI हैं, यह सबसे अधिक संभावना है कि SC / ST का उभरता नेतृत्व हो सकता है। इन समूहों की समस्याओं

में शामिल नहीं हो सके। परिणामस्वरूप इन समूहों को और अधिक हाशिए पर रखा जा सकता है।

**प्रत्युषा पटनायक (2005)** ने उड़ीसा के ढेंकनाल जिले की चार आदिवासी बहुल ग्राम पंचायतों के कामकाज में कमजोर वर्गों से संबंधित निर्वाचित प्रतिनिधियों की भागीदारी का अध्ययन किया। लेखक ने इन वर्गों द्वारा शक्ति के वास्तविक अभ्यास में किस हद तक संख्यात्मक प्रतिनिधित्व किया। लेखक ने पाया कि चुने हुए प्रतिनिधि समूह के विशिष्ट हितों को ठीक से व्यक्त करने या पंचायत के निर्णय में अपने स्वयं के निर्णय का उपयोग करने में सक्षम नहीं थे। लेखक ने निष्कर्ष निकाला कि विकेन्द्रीकरण में सकारात्मक कार्रवाई वंचित समूहों के "उचित और प्रभावी प्रतिनिधित्व" को सुनिश्चित करने में सफल नहीं हुई है। अधिकांश मामलों में प्रतिनिधि गाँव के कुलीनों के प्रति जवाबदेह थे और बड़े पैमाने पर नागरिकों के प्रति कोई जवाबदेही प्रदर्शित करने के बजाय उनके नियंत्रण में रहे।

**सोढ़ी जे.एस. और रामानुजम एम. एस. (2006)** ने पंचायती राज प्रणालियों के कार्य की जाँच पाँच राज्यों ( कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और पश्चिम बंगाल) में की। लेखक ने मुद्दों पर प्रकाश डाला और ग्राम सभा चुनाव, कार्यकताओं का विकास, वित्त का विकास, नियोजन कार्यान्वयन, समानांतर निकाय, महिलाओं के सशक्तीकरण, क्षमता निर्माण और प्रशिक्षण और सामाजिक अंकेक्षण और मुकदमेबाजी के मुद्दों पर विशेष सिफारिशें कीं। लेखक को लगता है कि पंचायती राज व्यवस्था (पीआरएस) संस्थानों पर संवैधानिक निर्देश स्पष्ट हैं। राज्य पंचायती राज अधिनियमों का पालन अनिवार्य आवश्यकता के रूप में किया गया, जो स्पष्ट और व्यापक नहीं हैं। पंचायती राज प्रणाली संस्थानों के कार्यात्मक और वित्तीय प्रतिनिधि अपर्याप्त और आधे-अधूरे हैं। प्रतिनिधिमंडलों की शैली और सामग्री ने कई

राज्यों में पीआरएस संस्थानों की प्रभावशीलता को व्यवस्थित रूप से कमजोर कर दिया है। यह धारणा देता है कि राज्य सरकारों के पास पंचायतों को मजबूत करने के लिए कोई राजनीतिक प्रशासनिक इच्छाशक्ति नहीं है। कर्नाटक को छोड़कर कई राज्यों में नौकरशाही भी विकेंद्रीकरण के विचार के अनुकूल नहीं है। उन्होंने पंचायती राज प्रणाली संस्थानों के कामकाज में राज्य पंचायत अधिनियमों में पर्याप्त प्रावधानों के माध्यम से हस्तक्षेप करने का अधिकार जमाकर अपने हितों की रक्षा की है। निर्वाचित प्रतिनिधियों से बहुत उम्मीद की जा रही है जो ज्यादातर गरीब, अज्ञानी और अनपढ़ हैं, आमतौर पर ग्राम पंचायत और पंचायती समिति स्तरों पर। पंचायती राज प्रणाली संस्थानों में निर्वाचित प्रतिनिधियों का योगदान नगण्य है, लेकिन इन निर्वाचित प्रतिनिधियों को बनाए रखने पर व्यय का निषेधात्मक आवंटन हो रहा है। अभी लोगों की भागीदारी भी संतोषजनक रही है। ग्रामसभा आम तौर पर निष्क्रिय होती हैं। निर्वाचित प्रतिनिधि भी ग्राम पंचायत और पंचायती समिति स्तरों पर पंचायत की गतिविधियों में रुचि नहीं ले रहे हैं। अधिकांश मामलों में, ग्राम पंचायत की बैठकें केवल कागजों पर होती हैं। इस संबंध में भारत का कर्नाटक राज्य  असाधारण रहा है। पीआरएस के सभी तीन स्तरों पर काम करने वाले सरकारी अधिकारियों को संबंधित राज्य सरकारों द्वारा प्रकाशित  किया जाता है। ऐसी भी रिपोर्टें हैं कि पंचायत सचिव, ग्राम पंचायत स्तर पर सरकारी अधिकारी, कुछ राज्यों में हैं, जिन्हें सरकार में अपने मूल विभागों में अधिशेष घोषित किया जाता है और इसलिए, ग्राम पंचायतों में काम करने के लिए तैनात हैं। ऐसे व्यक्तियों को उनके द्वारा सौंपे गए कार्यों को करने के लिए पर्याप्त प्रेरित नहीं किया जाता है।

**यतींद्र सिंह सिसोदिया (2016)** लेखक ने मध्य प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था के भीतर ग्राम सभा पर ध्यान केंद्रित किया। यह अध्ययन शाजापुर और देवास  जिलों में ग्राम सभा में लोगों की भागीदारी की प्रकृति पर आधारित था। लेखक ने बताया कि गाँव से लेकर गाँव तक

विभिन्न पंचायतों में प्रतिनिधित्व करते हैं। लेखक ने तर्क दिया कि सभी सदस्य ग्राम सभा में शामिल नहीं हुए थे। आमतौर पर पुरुष ग्राम सभा की बैठकों में भाग लेते हैं। उनके अध्ययन से पता चलता है कि बहुमत के मामलों में, कोई भी बैठक में शामिल नहीं होता है, जहां एक महत्वपूर्ण संख्या में यह कहा जाता है कि केवल पुरुष ही बैठकों में शामिल होते हैं। महिलाओं के एक तिहाई प्रतिनिधित्व का एक वैधानिक प्रावधान होने के बावजूद, ग्राम सभा की बैठक के लिए अनिवार्य, एक स्पष्ट-कटु उदासीनता घरों में स्पष्ट है। लेखक ने निष्कर्ष निकाला कि ग्राम स्वराज के लाभों के बारे में जानने के बावजूद ग्राम सभा की बैठक में भागीदारी कम रही है। कम भागीदारी को मुख्य रूप से जोरदार जाति व्यवस्था के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, गाँवों में वर्ग भेद और लिंग विभाजन मौजूद है । निर्णय लेने की प्रक्रिया में सरपंच और अन्य प्रभावशाली लोग हावी हैं। लेखक ने महसूस किया कि ग्रामसभा में संसाधन प्रवाह और इसकी बढ़ती हुई शक्ति और प्राधिकरण ने लोगों में कुछ रुचि पैदा की है। यह अपेक्षा की जाती है कि यह रूचि जमीनी स्तर पर अधिक व्यापक, सहभागी और अधिक तीव्र हो ।

**ऑरेलियानो फर्नांडिस (2008)** ने कहा कि पंचायती राज प्रणाली गांवों को आत्मनिर्भर इकाइयों के रूप में सशक्त बनाने और सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन को पूर्णतया स्थापित करने में विफल रही है। लेखक ने महसूस किया कि 73 वें संशोधन में कोई संदेह नहीं है कि प्रतिनिधियों और स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाने की नींव रखी गई है, लेकिन संघीय बाधाओं के कारण, यह राज्यों की घुसपैठ के माध्यम से जमीनी स्तर पर शक्तियों को विकसित नहीं करने के लिए तोड़ने में सक्षम नहीं था। हालाँकि GPRA को 1994 में पारित किया गया था, लेकिन GPRA के गोवा में PRIs की स्थिति काफी हद तक अपरिवर्तित रही। ऑपरेशन की विफलता के साथ-साथ प्रशासनिक विचलन भी है। राज्य सरकारें

अनुसूची XI में पंचायतों को आवंटित किए गए 29 विषयों को विकसित करने में विफल रही हैं। इसी तरह, कुछ राज्यों में तो अब तक जिला परिषद की शक्तियां विकसित नहीं हुई है। यह मुख्य रूप से सत्तारूढ़ अभिजात वर्ग द्वारा राज्य की धारणा, और राज्य की नौकरशाही के कारण है कि वे अकेले ही सबसे अच्छा जानते हैं, जो राज्य के लिए अच्छा है। वे ग्रामीण समुदायों की क्षमताओं को बेहतर ढंग से समझने और उनकी समस्याओं को हल करने और मुद्दों और समस्याओं पर निर्णय लेने और उनकी चिंता करने की उनकी क्षमता को हल करने से इनकार करते हैं। लेखक ने निष्कर्ष निकाला कि गोवा में पंचायतों की विफलता का मूल कारण राज्य सरकार द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों, महिलाओं सहित शक्तियों का गैर-विचलन करना है।

**कुंज बिहारी नायक (2018)** ने माध्यमिक साहित्य की समीक्षा के आधार पर भारत में पंचायती राज की प्रणाली का गंभीर विश्लेषण किया। इस अध्ययन ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला। एक ओर, भारतीय संविधान में 73 वें संविधान संशोधन के बाद की नई प्रणाली को कुछ वैज्ञानिकों, प्रशासकों, स्थानीय अभिजात वर्ग और हमारे देश के सभी वर्गों के महिमामंडित किया गया है, शक्ति के वास्तविक विकेंद्रीकरण के बारे में लाने और एक प्रयास के रूप में सफल होने के रूप में किया गया है । यह कानून देश में महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य कमजोर वर्गों के जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए लाया गया है । हालांकि, दूसरी तरफ, ऐसे आलोचक हैं जो यह आरोप लगाते हैं कि इस प्रणाली ने ग्रामीण समाज में कई समस्याओं को उत्पन्न किया है और उन्हें बनाए रखा है। सबसे पहले, कई निर्वाचित महिला नेता कठपुतलियों की तरह लगती हैं । निर्वाचित महिला नेता अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं हैं। दूसरे, कई स्थानों पर निर्वाचित अज्ञानी दलित और आदिवासी नेता या तो मुख्यधारा के समाज के प्रमुख नेताओं

से प्रभावित होते रहे हैं या उन्हें अपने पदों से हटने की धमकी दी गई है। तीसरा, महिलाओं, दलितों और आदिवासियों के लिए सीटों के आरक्षण ने अक्सर उच्च जाति वर्गों के बीच असंतोष पैदा किया है, जिन्होंने व्यवस्थित और रणनीतिक रूप से ग्रामीण समाज में संघर्ष और हिंसा के लिए जगह बनाई है। चौथा, पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रणाली की कमी के कारण अक्सर पंचायती राज प्रणाली द्वारा के चुने हुए नेता अपनी आधिकारिक गतिविधियों को चलाने के लिए अपने स्वयं के पैकेट से पैसा खर्च करनी पड़ती हैं। पांचवीं बात, राज्यों की अपनी शक्तियों और कार्यों को और भारतीय नौकरशाही के असहयोगी स्वभाव को विकसित करने की इच्छाशक्ति की कमी के कारण, लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का आंदोलन कमजोर पर रहा है। हालांकि, लेखक को लगता है कि निर्वाचित नेताओं को सही तरीके से काम करने के लिए वास्तव में सशक्त बनाया जा सकता है जब उचित कानूनी और प्रशासनिक प्रशिक्षण, नौकरशाही का पर्याप्त वित्तीय समर्थन और सहयोग सुनिश्चित किया जाता है।

**रत्नावली (2016)** ने गुजरात के अनुसूचित क्षेत्रों में स्थानीय प्रशासन के लक्ष्य की प्राप्ति का आकलन करने के लिए ग्राम सभाओं और उसमें लोगों की भागीदारी की जांच की। अध्ययन से पता चला कि ग्राम सभा पंचायती राज प्रणाली अधिनियम के अनुसार अपनी पूरी क्षमता के साथ काम नहीं कर पा रही है। पंचायतों और ग्राम सभा के विभिन्न स्तरों की भूमिका और कार्यों के बारे में केंद्रीय अधिनियम में अस्पष्टता और उनकी स्थिति के अनुसार परिवर्तन करने के लिए राज्यों को दिए गए लचीलेपन ने राज्यों को उनके दृष्टिकोण से निर्देशित किया है जहाँ ग्राम सभा को बहुत कम शक्ति प्रदान की है। गुजरात पंचायत (संशोधित) अधिनियम 1998 भी इसी श्रेणी में आता है। इस प्रकार ग्राम सभा शक्तिशाली संस्थाओं के रूप में कार्य नहीं करती है और समुदाय का बहुत कम ध्यान आकर्षित करती है। इसके अलावा, ग्राम सभा में

समुदाय की भागीदारी आम तौर पर कम है और सामाजिक महत्व के अधिकांश मुद्दों को शायद ही उठाया जाता है। इस तरह की स्थिति भागीदारी शासन के लिए अधिनियम में परिकल्पित मामलों में समुदाय के सशक्तिकरण में गतिरोध उत्पन्न होगा।

**द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग वीरप्पा मोइली की सातवीं रिपोर्ट (2008)** में कहा गया कि राज्यों द्वारा अनुसमर्थन की प्रक्रिया में पेसा के प्रावधानों को बहुत कम किया गया है और ग्राम सभा की अधिकांश शक्तियाँ जिला प्रशासन या जिला परिषद को दी गई हैं। PESA को लागू करने का मुख्य उद्देश्य जनजातीय समाज को आजीविका पर नियंत्रण करने में सक्षम बनाना, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में और आदिवासियों की पारंपरिक संस्कृति और अधिकारों की रक्षा के लिए कहना है। रिपोर्ट में उपलब्ध जानकारी इंगित करती है कि PESA का मुख्य उद्देश्य जनजातीय को अधिक स्वायत्त प्रदान से है। प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे, विशेष रूप से लघु वन उत्पादों पर परिभाषा और अधिकार अनसुलझे हैं और, सामान्य रूप से, पीईएसए के उद्देश्यों को किसी भी राज्य में किसी भी बड़ी जनजातीय आबादी के साथ किसी भी गंभीर तरीके से महसूस नहीं किया गया है। रिपोर्ट में महसूस किया गया कि मुख्य समस्या, आदिवासी आबादी से संबंधित संघर्षों से निपटने के लिए है कि मौजूदा संवैधानिक प्रावधानों और उनकी रक्षा के लिए बनाए गए कानूनों का बेहतर उपयोग नहीं किया जाता है। कुछ क्षेत्रों में, राज्य को आदिवासियों के हितों की रक्षा करने में कठिन और असंवेदनशील माना गया है और उनके पदस्थापन के स्थान पर सरकारी अधिकारियों की अनुपस्थिति से स्थिति और अधिक बढ़ जाती है। आदिवासियों की आबादी का एक महत्वपूर्ण वर्ग धीरे-धीरे चरमपंथियों से मुख्यधारा से दूर हो गया है। जनजातीय आबादी को जिस तरह से प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा उनकी भूमि और जंगलों से अलग कर दिया गया हैं।

**गोपीनाथ रेड्डी एम और अनिल कुमार (2010)** क्रमिक योजना अवधि के दौरान राज्य की विभिन्न नीतियों की पृष्ठभूमि में अनुसूचित जनजातियों की स्थिति और आंध्र प्रदेश में सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता पर इसके प्रभाव को दर्शाते हैं। लेखक ने कहा कि आजादी के बाद से, सरकार ने कई पंचवर्षीय योजनाएं, कार्यक्रम, नीतियां और कानून शुरू किए हैं और अनुसूचित जनजातियों के क्रमिक सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए प्रयास किए हैं, लेकिन वे अभी भी समाज के सबसे कमजोर वर्ग हैं। इन विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान, आदिवासी क्षेत्रों के लिए निधि आवंटन में काफी वृद्धि हुई है। लेकिन ज्यादातर आदिवासी अधिकारियों द्वारा बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार और आदिवासी विकास योजनाओं के अनुचित कार्यान्वयन के कारण सरकार द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं का लाभ नहीं ले पाए हैं । इसलिए, आंध्र प्रदेश में अधिकांश पहाड़ी जनजातियाँ उचित बुनियादी सुविधाओं और संचार सुविधाओं के अभाव से पीड़ित हैं। योजनाओं का अनुचित प्रबंधन और जनजातीय क्षेत्र में उपयुक्त कार्यक्रमों का अपर्याप्त कार्यान्वयन एक बड़ी समस्या है। बहुसंख्यक आदिवासी लोगों को सरकारी एजेंसियों द्वारा लागू की गई विकास योजनाओं की जानकारी नहीं है। आदिवासी लोगों में जागरूकता पैदा किए बिना, बेहतर परिणाम हासिल करना मुश्किल है। लेखकों ने विरोध किया कि बहुसंख्यक आदिवासी, वन संसाधन आजीविका का मुख्य स्रोत हैं। हालांकि, वन कानून जंगल पर उनकी निर्भरता को प्रतिबंधित करते हैं। इसके साथ, कई जंगलों को संरक्षित वन या अभयारण्य घोषित किया गया और उनके प्राकृतिक आवास से उनके निष्कासन की धमकी दी गई। यहां तक कि जहां बेदखल आदिवासी पुनर्वासित हैं, उन्हें खेती के लिए जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा छोड़कर, आजीविका के अतिरिक्त साधन उपलब्ध नहीं कराए गये हैं। गरीब और अन्य बुनियादी ढाँचे के कारण आदिवासी क्षेत्र दूरस्थ और दुर्गम हैं और अलग-थलग बने हुए हैं। लेखकों ने निष्कर्ष निकाला

कि साक्षरता, नामांकन, शैक्षिक स्थिति, स्वास्थ्य संकेतक, प्रति व्यक्ति आय, रोजगार के अवसरों, पीने के पानी, आवास जैसी बुनियादी सुविधाओं तक पहुंच के सामाजिक-आर्थिक चर की स्थिति पर विभिन्न समितियों, कार्य समूहों की शोध रिपोर्टों में समीक्षा करें। जल निकासी सुविधा, बिजली, आदि ने थोड़ा सुधार दिखा है, लेकिन अभी भी एसटी और सामान्य आबादी के बीच व्यापक अंतराल है। विभिन्न समीक्षाओं और रिपोर्टों ने राज्य और विभिन्न विभागों द्वारा नीतिगत कार्यान्वयन, धन के आवंटन, आवंटन और उपयोग, राज्य, जिला, ब्लॉक और गाँव के स्तरों पर संरचनात्मक अपर्याप्तताओं में विकास कार्यक्रमों की मार्मिक कार्यान्वयन को सामने लाया है।

**सुधा पाई (2014)** ने उत्तर प्रदेश राज्य के दो जिलों में पंचायती राज प्रणाली के अंतर्गत अनुसूचित जातियो और जनजातियो के सशक्तीकरण में सामाजिक पूंजी और पंचायत गतिविधियों की भूमिका का अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि चूंकि पश्चिमी यूपी के मेरठ जिले में सामाजिक पूंजी निर्माण की प्रक्रिया तेज और अपेक्षाकृत सफल रही है। पूर्वी यूपी के आजमगढ़ जिले की तुलना में, इसलिए, ग्राम पंचायत की भूमिका बाद की तुलना में पूर्व में अपेक्षाकृत प्रभावी और सफल रही है। बेशक, आरक्षण की सुविधा के कारण, दोनों जिलों में पंचायत प्रतिनिधियों की संख्या अधिक है, लेकिन वास्तविक अर्थों में मेरठ जिले में शक्ति संरचना की स्थिति बेहतर है, लेकिन आजमगढ़ के मामले में ऐसा नहीं है। उत्तरार्द्ध में, पंचायत में अभी भी उच्च जाति और उच्च पिछड़ी जाति के लोगों का वर्चस्व है, इस तथ्य के बावजूद कि औपचारिक नेतृत्व अनुसूचित जातियो के हाथों में है। इसकी वजह है कि अनुसूचित जाति नेताओं के पास सामाजिक पूंजी का अभाव है। लेकिन मेरठ में अनुसूचित जाति नेताओं में सत्ता की सौदेबाजी बहुत ज्यादा है। वे या तो पंचायत की गतिविधियों में हावी हैं या वे स्थानीय प्रमुख जातियों जैसे ठाकुरों और जाटों के साथ बातचीत करते हैं।

इसलिए, लेखक ने ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि मेरठ जिले में, जाटवों के बीच सामाजिक संबंधों के घनिष्ठ संबंध और मजबूत बंधन उभरे हैं, जिसने उन्हें जाटों और राजपूतों के प्रभुत्व को चुनौती देने और पंचायतों पर नियंत्रण हासिल करने में सक्षम बनाया है। आजमगढ़ जिले में, अनुसूचित जाति आर्थिक रूप से कमजोर है, यहाँ तक कि चर्मकार के बीच विभाजन और सामूहिक रूप से कुर्मियों और यादवों की शक्ति को चुनौती देने और पंचायतों में अधिक प्रभावी भूमिका निभाने में असमर्थ है। पूर्वी यूपी में अनुसूचित जनजातियो के बीच आर्थिक बदलाव और राजनीतिक लामबंदी की गति धीमी रही है, निम्न स्तर का टकराव पैदा हुआ और वर्चस्व की मौजूदा संरचना को बनाए रखा। इन अध्ययनों से पता चलता है कि आरक्षण ने अनुसूचित जनजातियो को पंचायतों में प्रवेश करने में सक्षम बनाया है और इस प्रकार आरक्षण व्यवस्था ने राजनीति में उनके प्रवेश में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालांकि, निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी के लिए यह पर्याप्त स्थिति नहीं है।

**नीलिमा देशमुख, (2016)** ने पंचायती राज प्रणाली के अंतर्गत अपने अध्ययन में वंचित आदिवासी लोगों के बारे में कुछ गंभीर बिंदुओं का उल्लेख किया है। आदिवासी भारत की आबादी का 8.2% हैं। फिर भी वे समाज में सबसे अधिक हाशिए पर हैं। जो आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से वंचित और शोषण का सामना कर रहे हैं। पूरे भारत में 40.1% से अधिक आदिवासी विस्थापित रहे हैं। एसटी आदिवासी आबादी का 46.86% ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा (बीपीएल) से नीचे और राष्ट्रीय स्तर पर 55.2% है। 63.71% आदिवासियों को भूमि, खराब खेती, और खराब स्वास्थ्य सेवा के प्रावधान के साथ अत्यधिक गरीबी की स्थिति में रहने के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप संचारी और गैर-संचारी रोगों की अधिक घटनाएं होती हैं, उनके पास आय सृजन और श्रम के रूप में काम करने के कुछ अवसर होते हैं। और आर्थिक प्रवास के प्रति बेहद संवेदनशील हैं।

63.5% से अधिक आदिवासी घरों में बिजली नहीं है। लगभग 53.1% आदिवासी आबादी के पास सुरक्षित पेयजल का सुलभ स्रोत नहीं है लगभग 83% आदिवासी आबादी के पास स्वच्छता की सुविधा नहीं है औसत मासिक उपभोग व्यय 388 रूपये के बराबर है।

**शिरसाथ एस. टी. (2014)** ने पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत आदिवासी विकास के समावेशी स्वरुप और भारत सरकार द्वारा प्रशासनिक सुधारों का विश्लेषण किया। लेखक ने भी निष्कर्ष निकाला कि पिछले सात दशक से भारत सरकार ने कुछ नए और महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं। परन्तु अभी तक उनका वांछित परिणाम नहीं देखा गया हैं। पीईएसए अधिनियम के कार्यान्वयन में एसटी और प्रशासनिक समस्याओं के बीच जागरूकता की कमी और अन्य प्रशासनिक सुधार विकास प्रक्रिया में प्रमुख बाधाएं हैं। यह अधिनियम और ऐसे सुधार बहिष्कृत जनजातियों के समावेशी विकास में मील का पत्थर साबित हो सकते हैं। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय आदिवासी अभी भी विकास की मुख्यधारा में नहीं हैं। लेकिन, भारत सरकार ने 73 वें संवैधानिक संशोधन, पीईएसए अधिनियम और विभिन्न समितियों और आयोगों द्वारा सुझाए गए निरंतर प्रशासनिक सुधारों की मदद से आदिवासी स्थानीय शासन के लिए प्रशासनिक सुधारों को लागू किया है। आरक्षण के माध्यम से पंचायती राज प्रणाली में प्रतिनिधित्व की गारंटी और स्थायी आर्थिक विकास की दिशा में कारगर साबित रहा हैं।

**सुंदर राव, एम. और लक्ष्मण राव, बी. (2010)** ने आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम जिले में पंचायती राज और आदिम जनजाति समूहों (पीटीजी) और प्लेन ट्राइब्स के सामाजिक-आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन किया है। लेखकों ने सादे जनजातियों की तुलना में चयनित आदिम जनजाति समूहों (पीटीजी) के सापेक्ष सामाजिक-

आर्थिक पिछड़ेपन के निर्धारकों से संबंधित अंतर जनजाति विविधताओं को प्रभावित करने वाले कारकों की जांच की है। इस अध्ययन से निकाले गए प्रमुख निष्कर्षों के अंत में निष्कर्ष निकाला गया है कि अध्ययन क्षेत्र में सामाजिक आर्थिक स्थितियों से संबंधित चयनित सादे जनजातियों के साथ-साथ चयनित पीटीजी के भीतर भी अंतर -जनजाति विविधताएं प्रचलित हैं। इसलिए आंतरिक पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले पीटीजी परिवारों को अपने तेज सामाजिक-आर्थिक प्रसारण के लिए गहन विकास नीति पैकेज की आवश्यकता है। यह स्पष्ट है कि चयनित आदिवासी समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति सजातीय नहीं है। इसलिए पीटीजी और साधारण जनजाति के बीच अंतर जनजाति विविधताओं को हल करने के लिए और पीटीजी और साधारण जनजाति के भीतर अंतर जनजाति विविधताएं। विकासात्मक योजनाओं को प्रत्येक क्षेत्र में और प्रत्येक आदिवासी समूह के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों और जनजातियों की आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप में तैयार किया जाना है। लेखक ने सुझाव दिया कि पीटीजी और साधारण जनजातियों के विकास के लिए विशेष योजनाएँ बनाते समय संबंधित जनजातियों के पारंपरिक मूल्यों और प्रथाओं का संज्ञान लेने की आवश्यकता है।

स्थानीय निकायों और अनुसूचित जनजाति कल्याण विभाग के सहयोग से केरल इंस्टीट्यूट ऑफ लोकल एडमिनिस्ट्रेशन द्वारा (वर्ष 2011-2017 के बीच) एक सर्वेक्षण में राज्य में अनुसूचित जनजाति समुदायों की दयनीय जीवन स्थितियों का पता चलता है। राज्य में लगभग 49 प्रतिशत आदिवासी घरों में शौचालय नहीं हैं। लगभग 24,289 परिवारों के पास राशन कार्ड नहीं हैं। आदिवासी समुदायों के बीच सैकड़ों स्नातक और स्नातकोत्तर बेरोजगार हैं। राज्य में 33 अनुसूचित जनजाति समुदाय हैं। 40,1401 मजबूत आदिवासी आबादी में से, 'पानियन' समुदाय सबसे बड़ा है। पाँच आदिम जनजातीय समूहों, कोरगा, कटुनायकन,

चोलानिकान, कुरुम्बा और कादर की कुल जनसंख्या 26,273 है। राज्य में 4614 भूमिहीन आदिवासी परिवार हैं। 55 प्रतिशत से अधिक जीर्ण घरों में रहते हैं। कुल मिलाकर, 39,850 घरों में रसोई नहीं है और 49 प्रतिशत में शौचालय नहीं है। आधी आबादी शुद्ध पेयजल से वंचित है और 1252 आदिवासी बस्तियों का विद्युतीकरण नहीं हुआ है। 1300 से अधिक आदिवासी बस्तियों में जंगली जानवरों का खतरा है। सर्वेक्षण से पता चलता है कि एसटी महिलाओं में 887 माताएं और 20,301 विधवाएं हैं। इनमें से केवल 17 फीसदी को ही पेंशन मिल रही है। कई परिवारों के पास उचित चिकित्सा देखभाल तक पहुंच नहीं है। इनमें 4,036 अलग-अलग हैं और 2386 मानसिक रूप से विकलांग हैं। समुदाय में 40,323 क्रोनिक प्रकार की मरीज हैं। अनुसूचित जनजातियों में साक्षरता दर 72.77 है। उनमें से ज्यादातर प्राथमिक स्तर पर ही स्कूलों से बाहर हो जाते थे। गरीबी और शैक्षणिक संस्थानों तक पहुंच की कमी इसके प्रमुख कारण हैं। सर्वेक्षण के अनुसार, 15-59 आयु वर्ग के 77,680 लोग बेरोजगार हैं। इसमें पेशेवर योग्यता के साथ 2112 स्नातक, 200 स्नातकोत्तर और 2066 शामिल हैं। समुदाय की लगभग आधी आबादी ने ज्यादातर निजी संस्थानों या व्यक्तिगत धन उधारदाताओं से ऋण लिया है।

**बैजू, के.सी. (2011)** ने केरल में विकेंद्रीकृत शासन के तहत जनजातीय विकास का विश्लेषण किया है। लेखक गरीबी, भूमि अलगाव, शोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, रोजगार, सामाजिक विकास और इन लक्षित समूहों के लिए अपनी पहुंच और नीतिगत निहितार्थ और सेवा वितरण की मजबूती पर चर्चा करते हुए विकास और कल्याण कार्यक्रमों के विश्लेषण का प्रयास करता है। लेखक ने निष्कर्ष निकाला कि वंचित समूहों, अनुसूचित जनजातियों को आईसीटी में उन्नति का लाभ और उनकी जीवन स्थितियों को सुधारने में सेवा वितरण प्रबंधन से लाभ मिलने की उम्मीद है। स्थानीय स्व-सरकारी संस्थानों (एलएसजीआई) और ऊरुकुट्टैम

के माध्यम से भागीदारी विकास प्रक्रिया उस दक्षता में सुधार कर सकती है जिसके साथ वे इस बाह्य समुदाय को सेवाएं प्रदान कर सकते हैं। स्थानीय स्व-सरकारी संस्थानों (एलएसजीआई) और ऊरुकुट्टैम के विकेन्द्रीकरण और सशक्तिकरण की प्रभावशीलता काफी हद तक मानक गुणवत्ता और विवेकपूर्ण तरीके से लोगों को समय पर, लोगों के अनुकूल तरीके से सेवाएं प्रदान करने की उनकी क्षमता पर निर्भर करती है। आदिवासी विकास के लिए एक नए प्रतिमान की परिकल्पना की जा सकती है, जहां उत्तरदायी, पारदर्शी, जवाबदेह सार्वजनिक वितरण प्रणाली के समर्थन में आदिवासी लोगों की जरूरतों और भागीदारी के अनुरूप कार्यक्रमों / योजनाओं का निर्माण, कार्यान्वयन, निगरानी और मूल्यांकन किया जाए। ग्राम पंचायत और संबंधित ऊरूकूटम की एक संयुक्त और ईमानदार पहल जन वितरण प्रणाली की एक प्रणाली को आगे ला सकती है जिससे आदिवासी विशिष्ट योजनाओं और परियोजनाओं के कार्यान्वयन में शामिल मौजूदा मुद्दों और चुनौतियों पर काबू पाने के लिए वंचित आदिवासी समुदाय के लिए एक उचित और गुणवत्तापूर्ण सेवा सुनिश्चित हो सके।

**कुमार सत्यम (2017)** ने झारखंड में पंचायती राज संस्थानों में निर्वाचित आदिवासी महिला प्रतिनिधियों की भूमिका की जांच की। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि ज्यादातर मामलों में महिलाएं गाँव या अंतर-ग्राम संगठनों का मुखिया नहीं हो सकती हैं। जबकि PESA के अंतर्गत पंचायती राज संस्थानों के विभिन्न स्तरों पर महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान करता है, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप महिलाएं बहुत उत्साह के साथ आ रही हैं और वे राजनीतिक मंच में भाग ले रही हैं। महिलाओं ने भी अनारक्षित सीटों से चुनाव लड़ा और शानदार जीत दर्ज की। यह सच है कि वे वास्तव में अपने अधिकारों और कर्तव्य का आनंद नहीं ले रहे हैं जो कि पीईएसए अधिनियम द्वारा अब तक प्रदान किया गया है। पंचायत में ज्यादातर निर्णय उनके पतियों द्वारा लिए गए हैं। तो इस तरह से, महिलाओं को अभी भी

रबर स्टैम्प के रूप में काम कर रही है । स्थानीय स्वशासन में उनकी भूमिका, स्थिति और नेतृत्व को बढ़ाने के उद्देश्य से निर्णय लेने में सक्रिय भागीदारी पर जोर देने की आवश्यकता है। यह भी देखा गया है कि महिलाएं उन लोगों के खिलाफ ग्राम सभा में अपनी आवाज उठाने की क्षमता का प्रदर्शन नहीं कर रही हैं जो शराब की दुकानें चला रहे हैं और इस मुद्दे पर सभी चिंताओं और एकता के बावजूद गांव में बेच रहे हैं। पारंपरिक प्रणाली मूल रूप से दो स्तरों पर संचालित हो रही है, गाँव और अंतर-गाँव के रूप में । जबकि आधुनिक प्रणाली त्रिस्तरीय संरचना, गांव, ब्लॉक और जिला स्तर की बात करती है जो प्रकृति में अधिक लोकतांत्रिक और विकेंद्रीकृत है। लेकिन झारखंड में विशेष रूप से जनजातीय क्षेत्रों में निर्वाचित महिला प्रतिनिधि अभी भी अपने विशेष अधिकारों और कर्तव्यों के लिए अराजकता और भ्रम की स्थिति में हैं।

**अशोक कुमार एच और महेश टी.एम. (2016)** कर्नाटक के मैसूर जिले में पंचायती राज संस्थानों में आदिवासी महिलाओं की स्थिति की जांच की। अध्ययन से पता चला कि कोटेगला में महिला नेताओं ने सार्वजनिक स्थान पर कब्जा करने के अपने दृढ़ संकल्प का प्रदर्शन किया है। हालांकि महिलाओं को सशक्त बनाने की प्रक्रिया में बाधाएं हैं। डोड्डा हज्जुरु में बाधाओं को दूर करने और सशक्तीकरण प्रक्रिया बनाने के लिए, निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को स्थायी रूप से गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से निरंतर उन्मुखीकरण, सूचना, परामर्श और संवेदीकरण की आवश्यकता होती है । जहां महिला सदस्य और इस तरह उनकी उपस्थिति का समर्थन करते हैं। लेखक ने सुझाव दिया कि महिलाएँ इस वर्चस्व और अधीनता से बाहर आती हैं जिसके लिए उन्हें शिक्षित और प्रशिक्षित क्षमता निर्माण और जागरूक करने की आवश्यकता है। ये दोनों स्वयं में पर्याप्त परिस्थितियां नहीं हैं, महत्वपूर्ण निर्णय लेने से महिलाओं की उनकी कमी है। जागरूकता, शिक्षा और प्रशिक्षण की कमी के

अलावा, उत्तरदाताओं ने अन्य समस्याओं के बारे में भी अपनी राय व्यक्त की। वित्तीय संसाधनों की कमी को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता था। सशक्तिकरण के बीज बोए गए हैं और अब इस फूल कली को शिक्षित करने के लिए एनजीओ, राजनीतिक नेतृत्व और नौकरशाही संरचना की जिम्मेदारी है। आदिवासी जनजातियो के कल्याण के लिये पंचायती संस्थ्याए निरंतर कार्य कर रही है आशा है की आने वाले कुछ दशको में उनकी स्थिति और बेहतर हो सके।

**संदर्भ सूची:-**


1. गाँधी, एम.के., ग्राम स्वराज्य, नवजीवन पब्लिशिग हाउस, अहमदाबाद, 1962, पृष्ठ 67
2. पाण्डे, राजवली, (2000), प्राचीन भारत, पृष्ठ 56
3. असलम, एम., (2017), पंचायती राज इन इण्डिया, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, , पृष्ठ 13
4. सलेतोरे, बी.ए., 'एनसीएन्ट इण्डियन पोलिटिकल थोट एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स', एशिया पब्लिकेशन्स हाउस, बम्बई, 1963, पृष्ठ 419 - 21
5. सुरोलिया, शंकर, (1975), 'भारत में ग्रामीण शासन, कालेज बुक डिपो, जयपुर, पृष्ठ 25
6. जोशी , डॉ आर.पी. एवं मंगलानी, रूपा, 'पंचायती राज के नवीन आयाम', यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर, पृष्ठ 6
7. शर्मा, डॉ हरिशचन्द्र, , (1975), भारत में स्थानीय शासन का इतिहास, कालेज बुक डिपो, जयपुर, पृष्ठ 25
8. पूरणमल, डॉ , (2015) 'नवीन पंचायती राज एवं महिला नेतृत्व', पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, पृष्ठ 11
9. बाबेल, डॉ बसन्ती लाल, (2002) 'पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास योजनाऐं', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ5

10. खान, एस. इल्तिजा, (2001), 'गवर्नमेन्ट इन रूरल इण्डिया', एशिया पब्लिकेशन्स हाउस, बम्बई, पृष्ठ 31

11. पंवार, मीनाक्षी, (2017) 'पंचायती राज और ग्रामीण विकास', क्लासिकल पब्लिशिग कम्पनी, पृष्ठ 24-26

12. शर्मा, डॉ के.के., (2010), 'भारत में राज प्रशासन', कालेज बुक डिपो, जयपुर, पृष्ठ 3-4

13. वर्मा, परिपूर्णानन्द, (1999), 'पंचायती राज एक अध्ययन', लोकतंत्र समीक्षा, पृष्ठ 2

14. सरण, परमात्मा, (1984), 'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाऐं', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ 452

15. राठौड, डॉ मधु,(2017) 'पचायती राज और महिला विकास', पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, पृष्ठ 3

16. राजकुमार,(2000) 'महिला एवं विकास', अर्जुन पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 35

17. गुप्ता, भावना, पंचायती राज और कानून, इशाक पब्लिशिग हाउस, जयपुर, पृष्ठ 68

18. चन्देल, चतुर्वेदी, डॉ धर्मवीर एवं नत्थी लाल, भारत में पंचायती राज सिद्धान्त एवं व्यवहार, आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, पृष्ठ 9-10

19. व्यास, आशा,(2013) पंचायती राज में महिलाऐं, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, पृष्ठ 16-17

20. सारस्वत, सिंह, स्वप्निल, डॉ निशान्त,(2010) समाज राजनीति और महिलाऐं, दशा और दिशा , राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 129

21. महेश्वरी, श्रीराम, (2013), 'भारत में स्थानीय शासन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ 17

22. शर्मा, प्रेमनारायण, झां, संजीव कुमार, वाली विनायक, सुषमा विनायक, (2009), 'महिला सशक्तीकरण एवं समग्र विकास' , पृष्ठ 121

23. सिंह, डॉ बमेश्वर, (2001), 'भारत में स्थानीय स्वशासन', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 10

24. कटारिया, डॉ सुरेन्द्र,(2016), ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज, आर.वी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, पृष्ठ 18-19

25. मिश्रा, डॉ महेन्द्र कुमार,(2017), पंचायती राज संस्थाऐं अतीत, वर्तमान और भविष्य, कल्पना प्रकाशन, पृष्ठ 69

26. धोकलिया, आर.पी., (1961), विलेज पंचायत इन उत्तर प्रदेश , इलाहाबाद, पृष्ठ 61

27. मण्डल, अमल,(2007), 'वीमेन इन पंचायती राज इन्स्टीट्यूसन्' , कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 45

28. वैंकटरमैया एवं पट्टाभिराम, (1989), 'लोकल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया', सलेक्ट रीडिंग एकाउन्ट पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 119

29. ऑस्टिन, ग्रेनविल, (1972), 'द इण्डियन कन्स्टीट्यूशन कार्नर स्टोन आफ नेशन', दिल्ली, आक्सफोर्ड प्रेस, पृष्ठ 34

30. शर्मा, वी.एम., ब्रजभूषण एवं भट्ट, , (2019), 'जिला सरकार अवधारणा, विकास सम्भावना', रावत पब्लिकेशन, जयपुर पृष्ठ 116

31. सिसोदिया, यतीन्द्र सिंह,(2016) पंचायती राज एवं अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृष्ठ 60

32. अवस्थी एण्ड अवस्थी, (2003), 'भारतीय प्रशासन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ 603

33. मोदी, अनिता, (2011), 'महिला सशाक्तीकरण विविध आयाम', वाई किंग बुक्स, जयपुर, पृष्ठ 9

34. शर्मा, रेखा, (2017), ग्रामीण महिलाऐं एवं पंचायती राज, रावत प्रकशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 25

35. शर्मा, डॉ नीरजा, (2015), 'गाँधी चिंतन में लोकतंत्र', आस्था प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 15

36. त्यागी, डॉ शालिनी, (2006), 'पंचायती राज व्यवस्था में सत्ता शक्ति का विकेन्द्रीकरण', नवजीवन पब्लिकेशन, निवाई (टौंक), पृष्ठ 36

37. गोस्वामी, डॉ रवि, (2017) 'पंचायत राज इन इण्डिया', सिगनेचर बुक्स इन्टरनेशनल, दिल्ली, पृष्ठ 17-18

38. जोशी , आर.पी. एवं मंगलानी, (2010) भारत मे पंचायती राज, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 15

39. नारायण, डा. इकबाल, (8 सितम्बर, 1987), 'द कन्सैप्ट आफ पंचायती राज एण्ड ट्रस्ट इन्स्टीट्यूशनल इम्पलीकेशंस इन इण्डिया' (एशियन सर्वे) वोल्यूम नं. 9 , पृष्ठ 459

40. श्रीवास्तव, शिवानन्द, (2009), 'उत्तर प्रदेश पंचायत राज मैन्युउल', हिन्द पब्लिशिग हाउस, इलाहाबाद, पृष्ठ 6

41. मेहता, वी.आर., टू यार्क ए न्यू डेमोक्रेमिक आर्डर मिनिस्ट्री आफ सी.डी. एण्ड कोपरेटिव, नई दिल्ली, पृष्ठ 11

42. अनिल कुमार वद्दीराजू और शगुम मेहरोरा (2014), 'मेकिंग पंचायत अकाउंटेबल', इकनोमिक पोलिटिकल वीकिली , वॉल्यूम। XXXIX, नंबर 37, सितंबर 11-17.

43. बैजू, के.सी. (2014), 'केरल में विकेंद्रीकृत शासन के तहत जनजातीय विकास: मुद्दे और चुनौती', वॉल्यूम- 6. नंबर 1, पृष्ट 11-26

44. बलरामुलु सी.एच. और रविंदर डी. (2008), 'आंध्र प्रदेश में पंचायतों का शासन: पुनरोद्धार की आवश्यकता', लोक प्रशासन के भारतीय जर्नल, वॉल्यूम, नंबर 1, जनवरी-मार्च, पृष्ट 76-90.

45. देवेंद्र बाबू (1999), 'ग्रामीण विकास में पंचायतों की भूमिका: द फील्ड रियलिटी', अखिल भारतीय स्थानीय स्व-सरकार का त्रैमासिक जर्नल, एलएक्सएक्स, नंबर 1-2, जनवरी-जून, पृष्ट- 21 – 26.

46. कुमार सत्यम (2016), 'पंचायती राज संस्थान में राजनीतिक प्रतिनिधित्व: झारखंड के मूल निवासी लोगों का सशक्तिकरण', दलित और आदिवासी सामाजिक कार्य (IJDTSW) के भारतीय जर्नल, खंड 2, नंबर 3 नंबर 3, जून, पृष्ट -30-37.

47. कुंज बिहारी नायक (2014), 'भारत में नई पंचायती राज प्रणाली', ग्रामीण विकास एक समीक्षा के लिए बॉटम-अप दृष्टिकोण की एजेंसी के रूप में, बिष्णु सी. बारिक और उमेश सी. साहू (संस्करण), पंचायती राज संस्थान और बहिष्कृत, जयपुर के समावेश पर ग्रामीण विकास कथाएँ; रावत प्रकाशन, पृष्ट- 213-243

48. माही पाल (2015), 'आंध्र प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1994', माही पाल , राज्य पंचायती अधिनियम - एक महत्वपूर्ण समीक्षा; दिल्ली; वाणी-स्वैच्छिक एक्शन नेटवर्क इंडिया, पृष्ट 3-16

49. माही पाल (2004), 'राज शासन से लेकर स्वराज शासन की प्रगति, प्रदर्शन और परिप्रेक्ष्य', कुरुक्षेत्र, वॉल्यूम, 52, नंबर 10, अगस्त, पृष्ट-4-10.

50. मोहम्मद ओवास , तौसिब आलम और मो. आसिफ, (2009), 'आदिवासी महिलाओं का सामाजिक-आर्थिक सशक्तीकरण: एक भारतीय परिप्रेक्ष्य', ग्रामीण अध्ययन का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, वॉल्यूम-16, नंबर 1, पृष्ट 1-11

51. नारायण डी. (2018), 'स्थानीय शासन क्षमता के बिना पंचायती राज के दस साल का निर्माण', आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक', वॉल्यूम- XL, No.26, 25 जून –जुलाई 1, पृष्ट-2822 - 2832

52. नीलिमा देशमुख, (2013), 'अनुसूचित क्षेत्रों के लिए पंचायत विस्तार (पेसा) - महाराष्ट्र राज्य के गढ़चिरौली जिले के संदर्भ में भारतीय संदर्भ में सफल जनजातीय विकास के लिए एक प्रभावी उपकरण', अनुसंधान की समीक्षा, वॉल्यूम .2, नं .9, जून, पृष्ट-3-4

53. परना मित्रा (2018), 'भारत में अनुसूचित जनजातियों के बीच महिलाओं की स्थिति', द जर्नल ऑफ़ सोशियो-इकोनॉमिक्स, वॉल्यूम- 37, नंबर 3, जून.

54. प्रत्यसून पटनायक (2015), 'उड़ीसा की पंचायतों में कमजोर वर्ग की भागीदारी और जवाबदेही की सकारात्मक कार्रवाई और प्रतिनिधित्व', आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, वॉल्यूम- एक्सएल, नंबर 44 और 45 अक्टूबर 29 - 4 नवंबर.

55. पसायत चित्रसेन (2014), 'आदिवासी महिलाओं का सशक्तीकरण', त्रिपाठी एस. एन. , भारत में आदिवासी महिलाएँ, नई दिल्ली; डोमिनेंट पब्लिशर्स, पृष्ट- 92

56. योजना आयोग (2000), अनुसूचित क्षेत्रों के लिए पंचायत विस्तार की स्थिति पर एक रिपोर्ट (PESA) अधिनियम 1996 आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, झारखंड, गुजरात और छत्तीसगढ़ में, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ट .45, 79 -80

57. रत्नावली (2016), 'दक्षिण गुजरात के जनजातीय क्षेत्रों में स्वशासन में विकेंद्रीकरण और मुद्दे', वर्किंग पेपर नंबर 4, सेंटर फॉर सोशल स्टडीज, गुजरात.

58. सरोज कुमार दास (2011), 'पीईएसए - अनुरूपता और परिचालन मुद्दे: उड़ीसा का एक केस स्टडी', उड़ीसा समीक्षा, फरवरी-मार्च, पृष्ट- 41-45

59. दूसरा प्रशासनिक सुधार आयोग सातवीं रिपोर्ट (2008) संघर्ष समाधान के लिए क्षमता निर्माण, भारत सरकार फरवरी 2008, भारत सरकार, पृष्ट 88-91.

60. सोढ़ी जे. एस. और रामानुजम एम. एस. (2016), 'पंचायती राज प्रणाली: भारत के पांच राज्यों में एक अध्ययन', औद्योगिक संबंध के भारतीय जर्नल, वॉल्यूम- 42, नंबर 1, जुलाई, पृष्ट-1-41

61. डिसूजा, पी. आर, जोया हसन, ई. श्रीधरन और आर. सुदर्शन. (2012), 'विकेंद्रीकरण और स्थानीय सरकार: भारत में लोकतंत्र की दूसरी हवा' इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, मुंबई

62. पाई , एस (2012), 'नई पंचायतों में प्रधान: मेरठ जिले से फील्ड नोट्स,' आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 23 (18): 1009-10.

63. सत्यजीत सिंह और प्रदीप शर्मा, (2018), 'विकेंद्रीकरण संस्थानों और ग्रामीण भारत में राजनीति', नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस